श्रीगणेशाय नमः ।

आत्मबोधः ।



(श्रीशंकराचार्यविरचितो वेदांतग्रंथः)

काशीस्थराजकीयप्रधानपाठशालापरीक्षोत्ती-
र्णलौंखग्रामनिवासिपण्डितामीहिरच-
न्द्रकृतभाषाविवरणसहितः ।

सोयम्

श्रीकृष्णदासात्मजक्षेमराजेन
मुम्बय्यां
स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" मुद्रणालये
मुद्रयित्वा प्रकाशितः ।

संवत् १९८०, शके १८४५.

यह पुस्तक खेमराज श्रीकृष्णदासने बम्बई खेतवाडी ७ वीं गली खम्बाटा लैन, निज "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम् प्रेसमें अपने लिये छापकर यहीं प्रकाशित किया ।

भूमिका ।

एतदात्मबोधनामकम्प्रकरणम्परमपूज्यवेदान्तशास्त्राचार्यश्रीमच्छंकराचार्यप्रणीतम् अस्य चात्मबोधसाधकत्वेन संसारविच्छेदजनकतया मुमुक्षूपयोगितास्तीति सर्वजनप्रसिद्धम् आत्मबोधश्च धर्मार्थकाममोक्षरूपचतुर्विधपुरुषार्थान्तर्गतमोक्षसाधकः स चातिदुरूहबृहद्वेदांतप्रकरणैश्चिरसाध्योऽतःश्रीमदाचार्यैः सुखत आत्मबुद्ध्या एतल्लघुप्रकरणन्निरमायि एतस्यापि भाषारसिकसाधारण्येन प्रसिद्धिमीहमानैः श्रीमुंबापूःस्थश्रीकृष्णदासात्मजखेमराज–श्रेष्ठिभिर्भाषोद्धृतयेऽहमयोजि मया चैतद्यथामति भाषायामुद्धृत्य विद्वरणयोरर्प्यत इति शम् ॥

लाँखग्रामनिवासी–काशीस्थराजकीयप्रधानपाठशालापरीक्षोत्तीर्णः,

पं० मिहिरचन्द्रशर्मा.

॥ श्रीः॥

आत्मबोधः

भाषाटीकासमेतः ।



श्रीगणेशाय नमः ।

ॐ तपोभिः क्षीणपापानां शांतानां वीतरागिणाम् ॥ मुमुक्षूणामपेक्ष्योऽयमात्मबोधो विधीयते ॥ १ ॥

नत्वा ब्रह्म चिदानंदं भाषायामात्मबुद्धये ॥
मया मिहिरचंद्रेण आत्मबोधो वितन्यते ॥ १ ॥

भा०-कृच्छ्चांद्रायण और नित्य नैमित्तिक उपासनाआदिके अनुष्ठान (करना) रूप [त]पोंसे अथवा-नेत्रआदि इन्द्रियोंके निग्रह-[रू]प तपसे-क्षीण भये हैं पाप जिनके अर्थात् राग-[द्वे]ष आदि अंतःकरणके दोषोंसे रहित और

शान्त-अर्थात् क्षोभरहित और वीतराग अर्थात् इसलोक और परलोकके भोगोंकी इच्छासे शून्य जो मुमुक्षु-पुरुष हैं-अर्थात् जिनको जन्म-जरा-मरण-संसाररूप ग्रन्थिके छेदन करनेकी अभिलाषा है उन मुमुक्षु पुरुषोंको है अपेक्षा जिसकी ऐसा यह आत्मबोधप्रकरण विस्तारसे वर्णन करते हैं-अर्थात् जिससे आत्माका ज्ञान हो ऐसा प्रकरण लिखते हैं ॥ १ ॥

बोधोऽन्यसाधनेभ्यो हि साक्षान्मोक्षैकसाधनम् ॥ पाकस्य वह्निवज्ज्ञानं विना मोक्षो न सिद्ध्यति ॥ २ ॥

भा०-कदाचित् कहो कि तप जप योग आदिसे-मोक्ष हो सकता है तो आत्मज्ञानको मोक्षका साधन कैसे कहते हो-सो ठीक नहीं-क्योंकि-अपने स्वरूपभूत जो आत्मा-उसका बोधही मोक्षका कारण श्रुतियोंसे सिद्ध है और व

उपासना तो अन्तःकरणके शोधक हैं-इससे-आत्मबोधको मोक्षका साधन होनेमें-दृष्टान्त कहते हैं कि जैसे एक अग्निही-पाकका-साक्षात् कारण है-इसीप्रकार अन्यसाधनोंसे अर्थात् जप तप-मंत्र आदि नानाप्रकारके कर्मोंकी अपेक्षासे बोध-मोक्षका एकही असाधारण साधन है-इसमें ज्ञानके विना-मोक्ष सिद्ध नहीं होता-तात्पर्ययह-कि जैसे जगत्में-पाकके काष्ठ अन्न-जल-आदि सहकारि कारण हैं-इसीप्रकार परम्परासे जपतपहै आदिभी मोक्षके सहकारी कारण हैं-साक्षात् कारण नहीं-सोई-इन श्रुतियोंमें लिखाहै कि ानसेही मोक्ष होता है-ज्ञानके विना मोक्ष नहीं ोता-प्रकाशरूप ब्रह्मको जानकर-सब पाशों-बंधन] की हानि होतीहै-इससे-ज्ञानके विना ोक्ष सिद्ध नहीं होता-यह सिद्धान्त है ॥२॥

---

(१) ज्ञानादेव तु कैवल्यम्-ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः

(२) ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः।

अविरोधित्तया कर्म नाविद्या वि-
निवर्तयेत् ॥ विद्याऽविद्यां निह-
न्त्येव तेजस्तिमिरसंघवत् ॥ ३ ॥

भा०--कदाचित् कहो कि विचित्रशक्तिवाले
कर्मोंकेही द्वारा जनकआदि सिद्धिको प्राप्त हुए
इससे-कर्मोंके द्वारा अज्ञानका नाश क्यों
मानते हो सो ठीक नहीं क्योंकि जो पदार्थ
जिसका विरोधी नहीं होता वह उसके नष्ट करनेमें
समर्थभीनहींहोता इससेअज्ञानकेअविरोधीकर्म
अज्ञानकोनष्टनहीं कर सक्ते--औरकर्मसहीजनक
आदि संसिद्धिको प्राप्त भये--वहांससिद्धिशब्दसे
अन्तःकरणकी शुद्धि लेते हैं मुक्ति नहीं--
बातको--दृष्टान्तसे--स्पष्ट करते हैं कि--अज्ञानके
अविरोधि होनेसे कर्मअविद्याकोनिवृत्त नहीं

सत्ता—क्योंकि ये दोनों जडपदार्थ हैं—इससे-मैंशुद्ध बोध-मुक्तस्वरूपब्रह्म हूं-इसप्रकारका जो विद्यारूप ब्रह्म और जीवात्माकी एकताका ज्ञान है-वही-मैं मनुष्य हूं-सुखी हूं-दुःखी हूं—इत्यादि अविद्यारूप अज्ञानका इसप्रकार निवर्तक है जैसे-सूर्यआदिका प्रकाशरूप तेज अन्धकारका निवर्तक होताहै— तिससे आत्मज्ञानके प्रकाशकालमेंही सम्पूर्ण अज्ञानका नाश होजाताहै ॥ ३ ॥

परिच्छिन्न इवाज्ञानात्तन्नाशे सति केवलः॥ स्वयं प्रकाशते ह्यात्मा मेघापायेंऽशुमानिव ॥ ४ ॥

भा०—कदाचित् कहो कि—आत्मा प्रतिशरीर-परिच्छिन्न है—अर्थात् जन्मसेही—नाशवान् ीत होता है तो जीव ब्रह्मकी एकताके ज्ञानसे ज्ञानकीनिवृत्ति कैसीबनसक्ती है—सोठीकनहीं ोंकि, अज्ञानसे यद्यपि आत्मा परिच्छिन्नके

समान प्रतीत होता है तथापि अज्ञानके नाश होते ही अपरिच्छिन्नके समान स्वयम्प्रकाशरूप होजाता है-इस बातको-दृष्टान्तसे-स्पष्ट करते हैं कि -सर्वत्र व्यापक रूप अद्वितीय आत्मा-अज्ञानसे कल्पित देव मनुष्य आदि-शरीरोंके अध्यास (भ्रम) से परिच्छिन्न (आच्छादित) के समान-प्रतीत होता है-और जब-तत्त्वमसि-आदि महावाक्योंके द्वारा--आत्मा और ब्रह्मकी एकताका ज्ञान हो जाता है--तब अज्ञानके किये-मिथ्या अध्यासरूप आरोपका नाश-होनेसे-आत्मा केवल-अर्थात् सजातीय-विजातीय-स्वगत आदि तीनों भेदोंसे रहित-स्वप्रकाश ब्रह्मरूप प्रतीत इस प्रकार होताहै जैसेआवरणाल्प-मेघोंका नाश होनेपर-प्रकाशरूप सूर्य प्रतीत होता है इससे यह सिद्ध है-अज्ञानके नाश होते ही-आत्मा-स्वयं प्रकाशमान ब्रह्मरूप हो जाता है ॥ ४ ॥

अज्ञानकलुषं जीवं ज्ञानाभ्यासाद्वि निर्मलम् ॥ कृत्वा ज्ञानं स्वयं नश्येज्जलं कतकरेणुवत् ॥ ५ ॥

भा०-कदाचित् कहो कि अज्ञानके नाशसे केवल ब्रह्मरूप आत्माका होना असम्भवहै-क्यों कि-अज्ञानके नाश करनेवाली जो वृत्ति हैं-उनके ज्ञानसे-द्वैतकी प्राप्ति होयगी ब्रह्मज्ञानकी नहीं सो ठीक नहीं-यद्यपि-जीवात्मा अज्ञानसे मलिन है तथापि वास्तवमें-शुद्ध-है इस बातको दृष्टान्तसे स्पष्ट करते हैं-कि कर्ता भोक्ता सच्चिदानंदस्वरूप आत्मा-यद्यपि अज्ञानसे-अपनेको कर्त्ता भोक्ता जीवरूपभ्रमकेद्वारा मानताहै;इससे अज्ञानसे-मलिनभी जीव-ज्ञानके अभ्याससे-निर्मल है, अर्थात्-कर्ता-भोक्तासे भिन्न-सच्चिदानन्दकूटस्थ साक्षीरूप-ब्रह्म है-इस पूर्वोक्त ज्ञानाकार

जो वृत्ति हैं वे ज्ञानको उत्पन्न करके इस प्रकार नष्ट हो जाती हैं जैसे कतकरेणु निर्मली बूटि जलको निर्मल करके आप भी नष्ट होजातीहै इससे ज्ञानके अभ्याससे जीवात्माके निर्मलहोनेमें कुछ भी संशय नहीं है. ॥ ५ ॥

संसारः स्वप्नतुल्यो हि रागद्वेषादिसंकुलः ॥ स्वकाले सत्यवद्भाति प्रबोधेऽसत्यवद्भवेत् ॥ ६ ॥

भा०—कदाचित् कहो कि साक्षात्प्रत्यक्षरूपसे जब संसार सत्य प्रतीत होता है तो आत्मकी केवलरूपताके ज्ञानसे अद्वैत ब्रह्मज्ञान कै हो सक्ता है. सो ठीक नहीं.क्योंकि,मिथ्या जग से आत्माकीअद्वैततामें हानि नहीं होसकती इ बातको स्वप्नके दृष्टांतसे सिद्धकरते हैं कि रागद्वे आदिसे युक्त जो स्वप्नके तुल्य संसार है

निद्राके समयमें स्वप्नके तुल्य जोअपनीस्थितिहै उसके समयमें सत्यके समानयद्यपि प्रतीत होता है तथापि प्रबोधके होनेपर अर्थात् आत्मा और ब्रह्मकी एकताका जो ज्ञान उसके अनंतर क्षणमें ही असत्य (मिथ्या) के समान होजाता है इसी-से मिथ्याभूत जगत्से आत्माकी अद्वैततामें कोई ।नि नहीं है ॥ ६॥

तावत्सत्यं जगद्भाति शुक्ति-
का रजतं यथा ॥ यावन्न ज्ञायते
ब्रह्म सर्वाधिष्ठानमद्वयम् ॥ ७ ॥

भा०-जगत्के अधिष्ठान कूटस्थ साक्षीरूप आत्माका जबतक ज्ञान नहीं होता है तबतकही संसार सत्यके समान प्रतीत होता है इसबातको दृष्टांतसे स्पष्ट करते हैं कि जैसे जबतक नीलपृष्ठ त्रिकोणाकारशुक्तिका ज्ञान नहीं होता तबतक

ही शुक्ति (सीपी) का रजत (चांदी) सत्यके समान प्रतीत होताहै तिसी प्रकार जबतक सब अधिष्ठान अद्वैत ब्रह्मका ज्ञान नहीं होता तबतकही जगत् सत्य प्रतीत होता है और ब्रह्मज्ञानके होतेही शुक्ति रजतके समान मिथ्या प्रतीत होने लगतीहै ॥ ७ ॥

सच्चिदात्मन्यनुस्यूते नित्येविष्णौ
प्रकल्पिताः ॥ व्यक्तयो विविधाः
सर्वा हाटके कटकादिवत् ॥ ८॥

भा०--तिससे संपूर्ण जगत् ब्रह्ममें कल्पित इस बातको दृष्टांतसे दृढ करते हैं कि, सत्चि आत्मा स्वरूप और अनुस्यूत अर्थात् जैसे सू मणि और मणिमें सूत्र अनुगत हैं इस प्रक ओत प्रोत और नित्य और व्यापक (चराच ह्मस्थित) और सबके उपादान कारणरूप

ाना प्रकारकी जो देव, मनुष्य, पशु, कीटआदि यक्ति हैं अर्थात् मूर्तिमान् नामरूपात्मक जगत है वे सब इसप्रकार क ित हैं जैसे सुवर्णमें कटक, कुंडल आदि कल्पनामात्र हैं वस्तुतः सुवर्णही सत्य है—इससे नामरूपात्मक जगत् मिथ्यारूप है और शुद्धरूप आत्मा सत्य है इसमें कोई संदेह नहीं है ॥ ८ ॥

यथाकाशो हृषीकेशो नानोपा-
धिगतो विभुः ॥ तद्भेदाद्भिन्नव-
द्भाति तन्नाशे सति केवलः ॥९॥

—कदाचित् कहो कि, प्रपंच मिथ्याभी है जीवभेद सत्य है तो प्रपंचके अधिष्ठान-आत्मामें सत्यता और अद्वितीयरूपता ीत होसकती है सो ठीक नहीं क्योंकि तो आत्मा अद्वितीय है और दर्भ

कल्पित है इस बातकोही दृष्टांतसे स्पष्ट करते हैं कि जैसे व्यापकरूप आकाश घट मठ आदिउपाधियोंमें प्रविष्ट होकर तिस २ उपाधिके भेदसे घटाकाश मठाकाशरूप प्रतीत होताहै इसी प्रकार संपूर्ण इंद्रियों (अंतःकरण आदि) का ईश्वर (प्रेरक) विभु नाना प्रकारकी जो देहआदि उपाधि हैं उनमें प्रविष्ट हुआ उन उपाधियोंके भेदसे भिन्न २ प्रतीत होता है और उपाधियोंके नाश होनेपर केवल (एक) ब्रह्मरूप प्रतीत होताहै ॥ ९ ॥

नानोपाधिवशादेव जातिनामाश्रमादयः ॥ आत्मन्यारोपिता स्तोये रसवर्णादिभेदवत् ॥ १० ॥

भा०—कदाचित् कहो कि यदि मैं ब्राह्मण चारी-संन्यासी-हूंइत्यादिजातिवर्णआश्रम-

नाना प्रकारके धर्मोंसे युक्त आत्मा प्रतीत होताहै
तो असंग कैसे कहतेहो सो ठीक नहीं-क्योंकि-
जाति-वर्ण-आश्रम-आदि धर्म असंग आत्मामें
कल्पित हैं-वास्तवमें नहीं-इस बातका दृष्टांतसे
वर्णन करते हैं कि-पूर्वोक्त नाना प्रकारकी देह
आदि उपाधियोंकी महिमासेही असंग आत्माके
विषै-जाति-नाम-आश्रम आदि-इसप्रकार आरो-
पित हैं-अर्थात् भ्रमसे प्रतीत होतेहैं-जैसे-जलके
विषै-रस-(कटु-कषाय-लवणआदि)और-रक्त
पीत श्यामआदिरंग-प्रतीत होतेहैं-अर्थात्-तिस
तेस-रस रंग-की एकतासें जलकाभी वही रंग
प्रतीत होताहै-इसी प्रकार जातिआदिकोंकेसंग-
एकतासे आत्मामें भी भ्रमसे जाति-वर्ण-प्रतीत
होते हैं.वस्तुतः आत्मामैंभी जातिआदि कोई भी
धर्म नहीं है ॥ १० ॥

पंचीकृतमहाभूतसंभवं कर्मसंचि-
तम्॥शरीरं सुखदुःखानां भोगाय-
तनमुच्यते ॥ ११ ॥

भा०-अब अविद्यासे कल्पित उपाधियोंके स्वरूपकोकहते हैं कि, पंचीकरणकिये-जोपृथिवी-जल-तेज-वायु-आकाश-पांचमहाभूतहैं-जगत्के परिणामी उपादानरूप उनसे है-उत्पत्तिजिसकी ऐसा जो प्रारब्धकर्मसे संचित (रचित) स्थूल शरीर है वह आत्माके सुख दुःखोंका जो भोग उसका आयतन (स्थान) कहाता है ॥ ११ ॥

पंचप्राणमनोबुद्धिदशेंद्रियसमन्वि-
तम् ॥ अपंचीकृतभूतोत्थं सूक्ष्मां-
गं भोगसाधनम् ॥ १२ ॥

भा०-अब सूक्ष्म शरीररूप उपाधिको कहतेहैं कि-प्राण-अपान-उदान-व्यान-समान-औरसंकल्प

विकल्परूप अन्तःकरणके-वृत्ति है नाम जिसका ऐसा मन, और निश्चयात्मक अंतःकरण-की वृत्तिरूप बुद्धि, और श्रोत्र, त्वचा, चक्षु,जिह्वा,घ्राण ये पांच ज्ञानेंद्रिय और वाणी, हस्त, पाद,गुदा, लिंग, ये पांच कर्मेंद्रिय–इन सत्रह तत्त्वोंसे युक्त, और पञ्चीकरण नहीं किये पांच सूक्ष्म महाभूतोंसे उत्पन्न, जो सूक्ष्म शरीर है वह आत्माके भोगोंका साधन [हेतु] है–यह आत्माकी तीसरी उपाधि है ॥ १२ ॥

अनाद्यविद्यानिर्वाच्या कारणो-
पाधिरुच्यते ॥ उपाधित्रितयाद-
न्यमात्मानमवधारयेत ॥ १३ ॥

भा०–अब कारणशरीररूप तीसरी उपाधि-को कहते हैं कि अनादि जो सत्य असत्य कहनेके अयोग्य और जगत्की उत्पत्ति करनेमें समर्थ

माया है-यदि वह माया सत्य है तो ज्ञानसे नष्ट न होगी और असत्य है तो उससे जगत्की उत्पत्ति न होगी इससे सत्य असत्यरूपसे अनिर्वचनीया है ऐसी जो समष्टि व्यष्टिरूप जगत्-स्थूल सूक्ष्मरूप शरीरआदिका उपादान कारण माया है वह कारण उपाधि कहाती है इन-पूर्वोक्त स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीररूप उपाधियोंसे भिन्न आत्माका निश्चय करै अर्थात् इन तीनों उपाधियोंके साक्षीरूप आत्माको इस प्रकार भिन्न समझे जैसे घटआदिका द्रष्टा घटआदिसे भिन्न होता है ॥ १३ ॥

पंचकोशादियोगेन तत्तन्मय इव स्थितः ॥ शुद्धात्मा नीलवस्त्रादियोगेन स्फटिको यथा ॥ १४ ॥

भा०-कदाचित् कहो कि पूर्वोक्त तीन उपाधि-

प्रतीत होते हैं-स्वभावसे आत्मामें कोईभी धर्म नहीं है-और पूर्वोक्त श्रुतिमें जो आत्माको अन्नर-समय कहा है वह सूक्ष्म ब्रह्म रूप वस्तुके ज्ञानार्थ है क्योंकि आत्मा एक है और कोश अनेक हैं-और कोश उत्पन्न और विनाशी हैं आत्मा अवि-नाशी है और -कोश धर्मी है आत्मा धर्मरहित है इन कारणोंसे आत्मा कोशरूप कैसे हो सक्ता है और आत्माकी जो तिस २ कोशरूप प्रतीति है ह इसप्रकार भ्रमसे है जैसे स्वभावसे शुद्ध ी स्फटिक नील पीत वस्त्र आदिके योगसे नीला और पीला प्रतीत होताहै ॥ १४ ॥

वपुस्तुषादिभिः कोशैर्युक्तं युक्त्या-
वघाततः ॥ आत्मानमंतरं शुद्धं
विविच्यात्तंडुलं यथा ॥ १५ ॥

भा०-यद्यपि कोश और आत्माकी एकरूप-

ताके अभ्याससे आत्मा कोशरूप प्रतीत होता है तथापि कोशोंसे पृथक् आत्माके विवेक करनेसे आत्मा शुद्धरूप प्रतीत होसक्ता है इस बातको दृष्टांतसे स्पष्ट करते हैं कि,जैसे तुष (भूसी) आदीसे युक्त भी चावलोंका शुद्ध आकार कूटना आदि युक्तिके द्वारा भिन्न शुक्लरूप प्रतीत होता है तैसेही अन्नमयआदि कोशोंकी विचाररूप युक्तिके द्वारा कोशोंके भीतर व्यापकरूप आत्माके शुद्धरूपकी प्रतीति होती है–और अन्नमय कोश पंचमहाभूतोंका कार्य होनेसे घटआदिके समान आत्मा नहीं होसक्ता और अन्नमयकोश (देह) को आत्मा मानोगे तो वर्तमान शरीरमें जो सुखदुःख भोगेजाते हैं वे विना कर्मकेही मानने पडेंगे और इस शरीरके जो पुण्यपापरूप कर्म हैं उनका विना फल भोगेही नाश मानना पडेगा इस प्रकार अकृतका अभ्यागम और कृतका नाशरूप

दोष हो जायगा—क्योंकि शरीररूप आत्मा जन्म-
से पूर्व और मरणके अनंतर नहीं रहता है इससे
अन्नमयकोशरूप आत्मा नहीं है और अपंचीकृत
पांच महाभूतोंका कार्य जडरूप जो प्राणमय-
कोश है वह भी आत्मा नहीं है क्योंकि वह जड
है और आत्मा चेतन है—और स्थूलदेहके समान
मनोमयकोशभी आत्मा नहीं है क्योंकि मन
संकल्प विकल्पात्मक है और आत्मा संकल्प-
विकल्पसे रहित है और मन सत्वगुणका कार्य
है और आत्मा नित्य है—और विज्ञानमयकोशभी
आत्मा नहीं है क्योंकि विज्ञानमय सत्वगुणका
कार्य है और परिणामी है और आत्मा परिणामी-
से भिन्न है—और आनंदमयकोशभी आत्मा
नहीं है क्योंकि अविद्यावृत्तिवाला वह घटआदि-
के समान जड है और प्रिय मोद आदि वृत्तियोंसे
युक्त है और आत्मा वृत्तियोंसे रहित और नित्य है

इसप्रकार पंच कोशोंसे भिन्न जो परमात्मा है
वह सच्चिदानंद साक्षीरूप है ॥ १८ ॥

तदा सर्वगतोऽप्यात्मा न सर्वत्राऽ-
वभासते ॥ बुद्धावेवावभासेत स्व-
च्छेषु प्रतिबिंबवत् ॥ १६ ॥

भा०—यदि आत्मा व्यापक ब्रह्मस्वरूप है तो
सर्वत्र प्रतीत होना चाहिये इस शंकाका उत्तर देते
हैं कि आत्मा तीनों कालोंमें सब वस्तुओंमे
व्यापकरूपसे वर्तमान भी है तो भी सर्वत्र प्रती
नहीं होता अर्थात् अस्ति, भाति, प्रियरूप
सदैव संपूर्ण घट आदि पदार्थोंमें यद्यपि अनुभ
रूप आत्मा व्यापक है तथापि ज्ञाता (जाननेव
ला) रूप आत्मा बुद्धिके विषे ही इस प्रकार भास
ता है जैसे स्वच्छ पदार्थमें ही सूर्य आदिका प्रति
बिंब पडता है मलिनमें नहीं अर्थात् सत्त्वगुणक

कार्य होनेसे शुद्ध जो बुद्धि है उसमें इस प्रकार आत्माका भान होता है जैसे घट पट कांच आदि मृत्तिकाके कार्योंमें निर्मल जो दर्पण उसमें ही मुख आदिका औरअपनी किरणोंके द्वारा सर्वत्र व्यापक सूर्यका जलमें ही प्रतिबिंब पडता है घट आदिके विषे नहीं–इससे यह सिद्धभया कि देह आदि रजोगुण तमोगुणके कार्य हैं उनमें आत्माकी ीति नहीं होसकती ॥ १६ ॥

देहेंद्रियमनोबुद्धिप्रकृतिभ्यो वि-
लक्षणम्॥तद्वृत्तिसाक्षिणं विद्या-
दात्मानं राजवत्सदा ॥ १७ ॥

भा०–देह इंद्रिय आदिके विषे वर्तमान भी ात्मा उनसे भिन्न है इस बातको दृष्टांतसे स्पष्ट ते हैं कि देह दश इंद्रिय मन बुद्धि और प्रकृ ने ाया) इनसे विलक्षण अर्थात् देहआदि माया-

के कार्य और जड, परिणामी, दृश्य हैं और आत्मा इनसे भिन्न चेतनरूप, परिणाम रहित, अदृश्य, सत्यरूप है और देह आदिकी वृत्तियोंका साक्षी है—अर्थात् देहकी बाल्यावस्थारूप वृत्ति और रूप आदिमें नेत्र आदिकी वृत्तियोंके साक्षी आत्माको सदैव राजाके समान जाने जैसे सभामें स्थित राजा सभामें स्थित संपूर्ण मनुष्योंकासाक्षी प्रेरक है और उनसे भिन्न है इसी प्रकार आत्माकोभी देह आदिसे भिन्न और देह आदिका साक्षीरूप जाने ॥ १७ ॥

व्यापृतेष्विन्द्रियेष्वात्मा व्यापारीवाविवेकिनाम् ॥ दृश्यतेऽभ्रेषु धावत्सु धावन्निव यथा शशी ॥ १८

भा०—कदाचित् कहो कि आत्मा भी व्यवहारवाला देह इंद्रिय आदिके संघातमें प्रतीत होकर

से साक्षीरूप नहीं होसकता क्योंकि साक्षी
से भिन्न होताहै जिनका साक्षी होताहै-सो ठीक
। क्योंकि अज्ञानियोंको भ्रमसे आत्मा व्यव-
के समान प्रतीत होताहै वस्तुतः आत्मामें
भी व्यापार नहीं है इस बातको दृष्टांतसे स्पष्ट
हैं कि नेत्र आदि इंद्रिय जब अपने अपने
पारोंमें व्यवहार करतीहैं अर्थात् अपने२विष-
को ग्रहण करतीहैं तब इन्द्रियोंके व्यवहार कर-
: आत्माभी व्यवहार करनेवालेके समान
अविवेकियोंको प्रतीत होताहै अर्थात्मूर्ख पुरुष
त्माकोभी व्यवहारी मानलेते हैं और वह उन-
मानना इसप्रकार भ्रमसे है कि,जैसे मेघोंके
नेपर चंद्रमाभी चलता प्रतीतहोताहै—और बु-
मान् मनुष्य—मेघोंकेसमान चंद्रमाको चलता
ते हैं और न आत्माको व्यापारी मानते हैं
कि वस्तुतः आत्मा व्यापाररहित है ॥ १८॥

आत्मचैतन्यमाश्रित्य देहेंद्रियमनोधियः ॥ स्वकीयार्थेषु वर्तंते सूर्यालोकं यथा जनाः ॥१९ ॥

भा०—कदाचित् कहो कि देह इन्द्रिय आ जडपदार्थ व्यापारी हैं तो चेतनभी मानने चा और देह इन्द्रिय आदि चेतन होयँगे तो वे आ रूपभी हो जायँगे सो ठीक नहीं—क्यों कि चे आत्माके आश्रयसे ही देह इन्द्रिय—अपने२ व्य हारमें वर्ते हैं इस बातको दृष्टान्तसे प्रगट करत कि आत्माकी चेतनताका आश्रय लेकर दे इन्द्रिय—मन—बुद्धि—ये अपने अपने विषयोंमें प्रकार वर्ततीहैं जैसे सूर्यके प्रकाशके आश्र सम्पूर्ण जन अपने अपने व्यवहारमें वर्तते हैं—इ देह इंद्रिय आदि स्वतः चेतन नहीं किन्तु आत्म की चेतनता ही उनमें प्रतीत होती है इसीसे आत्मरूप नहीं होसक्ते ॥ १९ ॥

देहेंद्रियगुणान्कर्माण्यमले सच्चि-
दात्मनि ॥ अध्यस्यंत्यविवेकेन
गगने नीलिमादिवत् ॥ २० ॥

भा०-कदाचित् कहोकि आत्मा चेतनरूप है तो भी उसमें जन्म-मरण-यौवन-वृद्ध-काण-बधिर-दर्शन-श्रावण-आदि व्यवहार प्रतीत होनेसे आत्मा-जन्ममृत्यु-वाला प्रतीत होता है-सो ठीक नहीं-क्योंकि, पूर्वोक्त जन्म-मृत्यु आदि-व्यवहार जो आत्मामें प्रतीत होतेहैं वे-अविवेकसे आत्माके विषे आरोपित हैं वस्तुतःआत्मा देह-इंद्रियआ-दिके धर्मोंसे रहितहै- इस बातको दृष्टांतसे दृढ [illegible]रतेहैं कि, [illegible]ह-और इन्द्रियोंके जो अन्ध, बधिर, [illegible]आदि धर्म हैं और गमन-वचन आदि जो कर्म हैं [illegible]नको-निर्मल अर्थात् अज्ञानके कार्य-देह-इंद्रिय-[illegible]ाम-रूप-संसार-आदिमलसे रहित सच्चित्-आन-[illegible]स्वरूप-आत्मामें-अविवेकसे मूढ पुरुष इसप्र-

कार आरोप करते हैं जैसे रूपरहित आकाशमें अविवेकसे नील पीत रंगोंका अज्ञानी पुरुष आरोप करतेहैं-वस्तुतः आत्मामें जन्म-मरण आदि कोई भी धर्म नहीं है ॥ २० ॥

अज्ञानान्मानसोपाधेः कर्तृत्वादीनि चात्मनि ॥ कल्प्यंतेऽम्बुगते चन्द्रे चलनादिर्यथाम्भसः॥ २१ ॥

भा०-कदाचित् कहो कि,देह आदिके जन्म आदि धर्म आत्माके विषय,मत हो-परंतु मैं कर्त्ता-भोक्ता-पुण्यवान्-पापीसुखी-दुःखीहूं-इत्या[दि] प्रतीतसे आत्मा कर्त्ता और भोक्ता प्रतीत होत[े] और नैय्यायिक आत्माको कर्त्ता भोक्तामा[न]ते भी हैं सो ठीक नहीं क्योंकि, कर्तृत्व-भोक्तृ[त्व] आदि अन्तःकरणके धर्म हैं वे अन्तःक[रण] और आत्माकी एकरूपताके अध्यास (भ्रम)

भात्मामेंआरोपित(माने)हैं इस बातको दृष्टान्तसे पष्ट करते हैं कि मनकी उपाधि जो कर्तृत्व-ोक्तृत्व आदि धर्म हैं–उनसे आत्माका सच्चि-ानंदरूप आच्छादित (ढका)है–इससेआत्मा-े यथार्थ रूपको न जानकर–नैयायिक आदि नज्ञानी पुरुष–कर्तृत्व–भोक्तृत्व आदि धर्मोंको आत्माके विषे अज्ञानसे इस प्रकार कल्पना करते ं जैसे–चलने आदि जलके धर्मोंको जलमें प्रति-बिम्बित चंद्रमामें मान लेते हैं इससे आत्मा न कर्ता है न भोक्ता है ॥ २१ ॥

रागेच्छासुखदुःखादि बुद्धौ स-त्यां प्रवर्त्तते ॥ सुषुप्तौ नास्ति त-न्नाशे तस्माद्बुद्धेस्तु नात्मनः॥२२॥

भाषा–अब राग–इच्छा–आदि जो अन्तः-रणके धर्म हैं वे भी अज्ञानसेआत्मामें कल्पित इस बातको अन्वयव्यतिरेक युक्तिसे कहते हैं

कि, विषयोंकी विशेष अभिलाषारूप औ सामान्य अभिलाषारूप इच्छा-और सुखदुः कर्तृत्व- भोक्तृत्व- आदि- संपूर्ण- धर्म- जा और स्वप्न अवस्थाके विषे-बुद्धि रहती है राग आदि प्रवृत्त होते हैं-और सुषुप्ति-अवस्था अपने कारणरूप अज्ञानमें बुद्धिका लयहोनेसे क भी राग आदि धर्म प्रतीत नहीं होता अर्था बुद्धिके होनेपर रागोंका होनारूप अन्वय बुद्धि नाश होनेपर-रागोंका न होनारूप व्यतिरेक इ अन्वय-व्यतिरेकोंसे पूर्वोक्त राग आदि धर्म-बुद्धि के हैं-आत्माके नहीं ॥ २२ ॥

प्रकाशोऽर्कस्य तोयस्य शैत्यम-
ग्नेर्यथोष्णता ॥ स्वभावः सच्चिदा-
नंदनित्यनिर्मलतात्मनः ॥ २३ ॥

भा०-कदाचित् कहो कि यदि आत्म

वभाव रागआदिरूप नहीं तो आत्माका स्वभाव
सा है-इस शंकाके उत्तरमें-दृष्टान्तोंसे आत्मा-
स्वभावका वर्णन करते हैं कि, जैसे सूर्यका
काश स्वभाव है और जलका शीत स्वभाव है-
और अग्निका उष्णस्वभाव है-इसीप्रकार आत्मा-
का सत्‌चित्‌आनन्द-नित्यनिर्मलस्वभाव है॥ २३॥

आत्मनः सच्चिदंशश्च बुद्धेर्वृत्ति-
रिति द्वयम् ॥ संयोज्य चाविवेके-
न जानामीति प्रवर्तते ॥ २४ ॥

भा०-कदाचित् कहो कि, मैं जानताहूं और मैं
हूं इस ज्ञानका आश्रय आत्मा प्रतीत होता
। उसको निर्विकार सच्चिदानन्द कैसे कहसक्ते
इस शंकाके उत्तरमें लिखते हैं कि, आत्माका
-चित्-अंश जो बुद्धिकी वृत्तिमें पड़ता है
र अज्ञानरूप आनन्दका अंश जो बुद्धिकी वृत्ति

है-इन दोनोंको अविवेकसे मिलाकर मैं-जानत
हूं-मैं सुखीहूं-इत्यादिव्यवहारोंमें जीव प्रवृ
होता है-और वस्तुतः असंग आत्मामें ज्ञान
श्रवण-सुख-दुःख आदि-नहीं होसक्ते-क्योंकि
ज्ञान और सुखाकारवृत्ति बुद्धिका परिणाम है
इससे ज्ञान आदिका आश्रय बुद्धि है आत्म
नहीं-आत्मामें जो इनकी प्रतीति है वह बुद्धि
और आत्माकी एकताके भ्रमसे है,इससे आत्म
निर्विकार सच्चिदानन्द रूप है॥ २४॥

आत्मनो विक्रिया नास्ति बुद्धेर्बो-
धो न जात्विति॥ जीवः सर्वमलं
ज्ञात्वा कर्ता द्रष्टेति मुह्यति॥ २५

भाषा-अब इस पूर्वोक्तकाही विशे
वर्णन करते हैं-आत्मामें कोई विकार न
क्योंकि इस श्रुतिके अनुसार आत्मा-[1] नि

१ निर्गुणं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरंजनम्।

क्रियारहित-शांत-पापरहित-और निरंजन (निर्मल) है। और इस स्मृतिमेंभी लिखा है कि, आत्मा अव्यक्त चिन्ताके अयोग्य और विकाररहित है-और बुद्धिमें-कदाचित् भी बोध (ज्ञान) नहीं है-क्योंकि बुद्धि मायाक कार्य होनेसे जड है-तथापि-अन्तःकरणमें प्रतिबि-म्बित चेतनकी चेतनतासे संपूर्ण देह इंद्रिय आदि जडपदार्थ-चेतनरूप प्रतीत होतेहैं इससे अन्तः-करण और आत्माके अभेदज्ञानसे बुद्धिके कर्ता ..., आदि धर्म-भ्रमसे आत्मामें प्रतीत होते हैं-... जीव सबको अपनेमेंजानकर मैं कर्ताहूं-और हूं-इस प्रकार मोहको प्राप्त होता है ॥ २५॥

रज्जुसर्पवदात्मानं जीवं ज्ञात्वा-भयं वहेत्॥ नाहं जीवः परात्मेति ज्ञातं चेन्निर्भयो भवेत्॥ २६ ॥

---

१ अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्य्योऽयमुच्यते ।

भाषा-अब आत्मामें मिथ्या आरोपरूप अज्ञानके फल और तत्त्वज्ञानके फलको दिखातेहैं कि जैसे अंधकारसे युक्त देशमें मनुष्य रज्जुकोही सर्प समझता है इसी प्रकार आत्माको जीव जान कर भयको प्राप्त होता है-अर्थात् जैसे रज्जुसर्पके ज्ञानसे भय-कम्प होते हैं इसी प्रकार विकाररहित आत्माको जीव माननेसे आत्मामें अनेक प्रकार के-संसारके दुःखरूप भय प्रतीत होते हैं अर्थात आत्माका अज्ञानी जन्म-मरणरूप भयको प्राप्त होता है और वह भय जीव और आत[illegible] द्वैतज्ञानसे होता है-क्योंकि-इस श्रुतिमें [1] है कि, दूसरेसे भय होता है-और जो [illegible] तुभी भेद करता है उसको भय होता है- आत्माको न जाने तो बडीही नष्टता होती।

1 द्वितीयाद्वै भयम्भवति-उदरमन्तरं कुरुतेऽथ तस्य भवति-न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः

और इस [1]स्मृतिमेंभी कहाहै कि, किंचि-
त्भी भेद करै तो रौरव नरकमें जाता है—और
ब मैं जीव नहीं किन्तु परमात्माहूं—ऐसा जानता
है—अर्थात् तत्त्वमसि आदि महावाक्योंके विचा-
रसे जीवको सच्चिदानन्द परब्रह्म स्वरूप समझता
है तब मनुष्य निर्भय होता है—सोई इस [2]श्रुति-
में लिखा है कि, जो ब्रह्मको जानता है वह
ब्रह्मही होता है ॥ २६ ॥

आत्मावभासयत्येको बुद्ध्यादी-
नींद्रियाणि च॥ दीपो घटादिव-
त्स्वात्मा जडैस्तैर्नावभास्यते ॥२७॥

०—कदाचित् कहो कि, यदि आत्मा बुद्धि
दिके निकट है तो बुद्धि आदि उसे क्यों नहीं
नते—सो ठीक नहीं—क्योंकि जडरूप बुद्धि

---

१ ईषदप्यन्तरं कृत्वा रौरवं नरकं व्रजेत् ।
२ ब्रह्मविद् ब्रह्मैवभवति ।

आदिको असंग आत्माका ज्ञान नहीं होसक्त
इस बातको दृष्टान्तसे कहते हैं-कि एक
आत्मा मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार और इन्द्रि
आदिका इस प्रकार प्रकाश करता है जैसे
आदि पदार्थोंका दीपक प्रकाश करता है अ
अपने आत्मा स्वरूप-वह परमात्मा बुद्धि आ
जड पदार्थोंसे इस प्रकार प्रकाशित नहीं होता जै
घट आदिसे दीपकका प्रकाश नहीं होता॥२७

**स्वबोधे नान्यबोधेच्छा बोधरू-
पतयात्मनः॥ न दीपस्यान्यदी-
पेच्छा यथा स्वात्मा प्रकाशते॥२**

भा०-कदाचित् कहो कि, यदि बुद्धि आ
आत्मा प्रकाशित नहीं होता तो उसका प्र
किससे होता है-इस शंकाके उत्तरमें बो
अत्माका स्वयंही ज्ञान होता है-इस ब
दृष्टान्तसे दृढ करते हैं कि आत्मा स्वयं

रूप है इससे बोधरूप आत्माके बोधमें अन्य
बोधकी इसप्रकार अपेक्षा नहीं, जैसे—एक दीप-
कको अपने प्रकाशके लिये अन्यदीपककी अपेक्षा
नहीं—इससे स्वात्मा स्वयंप्रकाशितहोताहै ॥२८॥

**निषिध्य निखिलोपाधीन्नेति नेती-
ति वाक्यतः ॥ विद्यादैक्यं महावा-
क्यैर्जीवात्मपरमात्मनोः॥ २९ ॥**

भा०—कदाचित् कहो कि, यदिआत्माकास्व-
ःही साक्षात्कार (प्रत्यक्ष) है तो यत्नके विनाही
व मुक्त होजायँगे तो श्रवण—मनन—आदि जो
के उपाय हैं वे सब व्यर्थ हो जायँगे
ठीक नहीं. क्योंकि अपरोक्ष रूपसे
आत्माके चैतन्यका ज्ञान है—वह सामान्य
। होनेसे मुक्तिका साधन नहीं है किंतु
वाक्योंसे उत्पन्न जो जीव और ब्रह्मकी
ताका ज्ञान वही मुक्तिका कारणहै—इसकाही

वर्णन करते हैं कि, नेतिनेति इस वाक्यसे सम्पूर्ण उपाधियोंका निषेध करके तत्त्वमसि आदि महा-वाक्योंसे जीव और परमात्माकी एकताको जानें अर्थात् इस व्याससूत्रके अनुसारही वह यह उपदेश है कि, नेति २ यह आत्मा नहीं २ इत्यादि श्रुतियोंके वचनोंसे अतत् (आत्मासे भिन्न)का निरसन(त्याग) करै अर्थात् आत्मासे भिन्नको जड और अनित्य समझे इस प्रकार स्थूल सूक्ष्म और कार्य कारणरूप नामरूपात्मक जगत्को अनित्य जाननेके अनंतर इन महा-वाक्योंसे जीव और परमात्माकी एकताक जानें उस एकताके ज्ञानकोही मुक्तिका कहतेहैं कि वह ब्रह्म तूहै—यह जीवात्मा ब्रह्म है प्रज्ञान ब्रह्महै—मैं ब्रह्म हूं और महावाक्योंसे ए

१ सएश आदेशो नेतिनेतीत्येतन्निरसनम् ।

२ तत्त्वमसि-अयमात्मा ब्रह्म-प्रज्ञानं ब्रह्म-अहं ब्रह्मास्मि

ताके ज्ञानका प्रकार वह है कि, दोनोंपद एक अर्थमें जहां वाच्यवाचक भाव संबंधसे वर्ते(कहैं) उसे सामानाधिकरण्य कहते हैं और वाच्य उसको कहते हैं जिसका शब्दके उच्चारण करतेही ज्ञानहो जैसे घटके उच्चारणसे घडेका-और वाचक उसको कहते हैं--जिसके उच्चारणसे पदार्थ जानाजाय जैसे पूर्वोक्त उदाहरणमें घट शब्द-अर्थात् घट शब्द और घडेका वाच्य वाचक भाव आदिसंबंधहै वह संबंध तीन प्रकारका है १ सामानाधिकरण्य-२विशेषण विशेष्यभाव-३-लक्ष्यलक्षण भाव-उनमें सामानाधिकरण्य, मुख्यसामानाधिकरण्य और बाधसामानाधिकरण्य भेदसे दो प्रकारकाहै-जिस वस्तुका जिस वस्तुके संग सदैव अभेदहो वह मुख्यसामानाधिकरण्य, जैसे डलेके सुवर्ण और भूषणके सुवर्णका-और जहां किसी अंशको बाधकर अभेदहो वह बाधसामानाधि-

करण्य–जैसे भूषणके नामरूपको बाधकर दोनों पूर्वोक्त सुवर्णोंका अभेद होताहै–अथवा जहाँ दो पदोंका परस्पर भेद हो और अर्थ एकहो वहाँ बाधसामानाधिकरण्य होताहै। जैसे–घट और कुंभ शब्दमें वहां शब्द भेद होनेपरभी मृत्तिका- रूप लक्ष्य एक है–वा जैसे सोऽयं देवदत्तः (वह यह देवदत्त है जो काशीमें देखाथा) इस वाक्यमें सः अयं देवदत्तः ये तीन पद हैं उनमें सः पद तिस परोक्षकालमें दृष्टका बोधकहै और अयं यह पद वर्तमान कालवृत्तिका बोधक हैऐ दोनों पदोंका भिन्न २ अर्थ है परन्तु दोनों पदों तात्पर्य एक देवदत्तमें है इससे देशकाल विशेषणके पतरियागसे देवदत्तरूप पिंड मात्र बोध होताहै–इसप्रकार तत्त्वमसि आदि वाक्योंमें परोक्ष आदि विशेषण विशिष्ट चे तत्पदका वाच्य अर्थ है और अपरोक्ष आदि वि

षण विशिष्ट चेतन त्वंपदका वाच्य अर्थ है इन
दोनों पदोंका अर्थ भिन्न २ है और तात्पर्य शुद्ध
चेतनके विषेहै इससे परोक्ष अपरोक्ष आदि विशे-
षणोंके त्यागसे चेतनरूप अर्थमें दोनोंका सामा-
नाधिकरण्य है यह सामानाधिकरण्य प्रथम है
और दूसरा विशेषणविशेष्यभाव संबंध यहहै कि,
जैसे सोयं देवदत्तः-यहां सः अयं ये दो पद देव-
दत्त पदके विशेषण हैं और देवदत्त विशेष्य है
और ये दोनों अपने २ देश कालरूप अर्थको
छोडकर देवदत्तके स्वरूपको बोधन करते हैं इसी
प्रकार तत्त्वमसि आदि महावाक्योंमें भी तत्प-
दका अर्थ परोक्ष आदि विशेषणसहित है-और
त्वंपदका अर्थ अपरोक्ष आदि विशेषण सहित
चेतन है विशेषणोंको त्यागकर दोनोंका असि
इस पदमें सामानाधिकरण्य है-तीसरा संबंध
लक्ष्यलक्षण भाव है कि, जैसे सोयं देवदत्तः यहां

सः अयं इन दो पदोंसे देशकाल आदि विशेष-
णोंको छोडकर देवदत्तमात्र लिखा जाताहै इसी-
प्रकार तत्त्वमसि आदि महावाक्योंमेंभी तत्पदः
अर्थ–अद्वितीय-परोक्ष व्यापकचेतन है और त
पदका अर्थ-सद्वितीय-अपरोक्ष परिच्छिन्न चेत
है इन विरुद्ध धर्मोंको त्यागकर एक चेतन ः
विरुद्ध धर्मरहित लक्ष्य अर्थ है वह लिखाजाताहै
इस प्रकार पूर्वोक्त तीनों संबंधोंसे लक्षणाके द्वा
जीव और ब्रह्मकी एकता सिद्ध होती है –और व
लक्षणा जहत्, अजहत्, जहदजहत, भेदसे ती
प्रकारकी है जैसे गंगामें घोसियोंका ग्राम है
गंगाके प्रवाहरूप वाच्य अर्थमें ग्रामका असं
इसलिये गंगापदकी अपने प्रवाहरूप वाच्य
को छोडकर तीरमें लक्षणाहै-क्योंकिजहांपद
संपूर्ण अर्थको छोडदे वह जहत् लक्षणा क
है–और महावाक्योंमें चेतनरूप अर्थ दो

एक है इससे अर्थका त्याग न होनेसे जहत् लक्षणा नहीं होसकती-और अरुण (लाल) दौडता है यहां लाल रंगमें दौडना असंभव है इससे अरुणपदकी लालघोडेमें लक्षणा है यहां अरुणपदकी अपने लालरूप अर्थको न छोडकर लालघोडेमें अजहत् लक्षणा होती है। क्योंकि जहां अपने अर्थको न छोडकर पद दूसरे अर्थको कहे वहां अजहत् लक्षणा होती है-यह लक्षणाभी महावाक्योंमें नहीं हो सकती। क्योंकि उनमें संपूर्ण वाच्य अर्थका त्याग नहीं है-और जहां किंचित् अर्थका त्याग किंचित्का ग्रहण हो वह जहदजहत् लक्षणा है वह लक्षणाही महावाक्योंमें इसप्रकार है। जैसे-सोयंदेवदत्तः इसवाक्यमें देशकाल पुष्ट कृश आदि विशेषणोंका त्याग है और मात्र देवदत्तका ग्रहण है ऐसेही तत्त्वमसि

आदि महावाक्योंमें समष्टि, व्यष्टि,स्थूल, सूक्ष्म आदि विरुद्ध अंशको त्यागकर व्यापक अखंड चैतन्यमात्रका जहदजहत् लक्षणासे बोध होताहै इसकोही भागत्यागलक्षणा कहते हैं ॥ २९ ॥

आविद्यकं शरीरादि दृश्यं बुद्बु-दवत्क्षरम् ॥ एतद्विलक्षणं वि-द्यादहं ब्रह्मेति निर्मलम् ॥ ३० ॥

भा०–कदाचित् कहो कि,चेतन असंगहै इस-से स्थूल आदि उपाधियोंके न त्याग करनेमें क्या हानि है सो ठीक नहीं क्योंकि उपाधियोंके त्याग विना अखंड सत् चित् आनंदका ज्ञानइसप्र नहीं हो सकता जैसे अज्ञानसे आरोपित स निषेध विना रज्जुका ज्ञान नहीं होताहै बातका वर्णन करते हैं कि,अज्ञानसे कल्पित शरीर आदि दृश्य(देखने योग्य) जड पदार्थ उनको बुद्बुद(बुलबुला)के समाननाशवान्

मझे और इनसे विलक्षण अर्थात् नित्यनिर्मलअपने जीवात्माको मैं ब्रह्म हूं ऐसेसमझेअर्थात् उपाधिरूप मलोंसे रहित ब्रह्मरूप मैंहूं यहजानै॥ ३०॥

देहान्यत्वान्न मे जन्मजराकार्श्यलयादयः ॥ शब्दादिविषयः संगो निरिंद्रियतया न च॥ ३१ ॥

भा०–अब महावाक्योंसे उत्पन्न हुई जो जीव और ब्रह्मकी एकता उसके मननका प्रकार कहते हैं कि, स्थूल और सूक्ष्म शरीरसे मैं भिन्न हूं इससे मेरेमें जन्म जरा कृशता मरण आदि नहीं हैं और आदि पदके देनेसे क्षुधा, तृषा आदि जो देहके धर्म हैं वेभी आनंदरूप, असंग मेरेमें नहींहैं और मैंइंद्रियोंसे रहित हूं इससे शब्द स्पर्श रूप रस आदि विषयोंके संगभी मेरा संबंध नहीं है दान मैं असंग निर्मल स्वभावरूप ब्रह्म हूं ऐसे न करै ॥ ३१ ॥

अमनस्त्वान्न मे दुःखरागद्वेषभयादयः ॥ अप्राणो ह्यमनाः शुभ्र इत्यादि श्रुतिशासनात ॥ ३२ ॥

भा०—अब आत्मामें मनके धर्मोंका निषेध कहते हैं कि, मैं मनसे भिन्न हूं इससे मेरे में दुःख–विषयोंमें प्रीतिरूप राग द्वेष (वैर) संकल्प, विकल्प, मोह, शोक, भय आदि जो मनके धर्म हैं वे मेरेमें नहीं हैं–और क्षुधा तृषा आदि जो प्राणोंके धर्म वेभीमेरेमें नहीं हैं क्योकि, मैं मन प्राणोंसे भिन्न हूं–इससे श्रुतिने भी आज्ञाकी है कि, परमात्मा प्राणसे भिन्नहैऔर मनसे भिन्नहै और शुभ्रअर्थात् अविद्याके मलोंसे रहित है और अखण्ड सच्चिदानंदरूप निर्विकार चेतनरूप है ॥ ३२ ॥

एतस्माज्जायते प्राणोमनः सर्वेन्द्रि-

याणि च ॥ खं वायुर्ज्योतिरापश्च पृथ्वी विश्वस्य धारिणी ॥ ३३ ॥

भा०-अब प्राण आदि परमात्मासे उत्पन्न होनेसे अनित्य हैं। इस बातका वर्णनकरतेहैंकि, इस प्रत्यक् भिन्न अर्थात् अन्तःकरणके साक्षी वा प्रेरक-वा असत् जडदुःखरूप संसारसे विपरीत सत् चित् आनंदरूप ब्रह्मसे क्रियाशक्तिरूप प्राण और ज्ञानशक्तिरूप मन (अंतःकरण) और संपूर्ण इंद्रिय और आकाश वायु अग्नि जल और स्थावर जंगमरूप विश्वके धारण करनेवाली पृथिवी यह संपूर्ण प्रपंच-अनादि अविद्याके द्वारा-पूर्वोक्त ब्रह्मसेही उत्पन्न होताहै ॥ ३३ ॥

निर्गुणो निष्क्रियो नित्यो निर्विकल्पो निरंजनः॥ निर्विकारो निराकारो नित्यमुक्तोऽस्मि निर्मलः॥३४॥

भा०-प्रकृतिरूप माया और मायाके कार्य बुद्धि, और सत्त्वगुण, राग, इच्छा, आदिसे रहित रूप, निर्गुण-और देह आदिकी क्रियासे रहितरूप निष्क्रिय-और देह आदिसे भिन्नरूप नित्यचेतनरूप-और विकल्पसे रहित अर्थात मनसे भिन्न निरंजन अर्थात् मायाके मलसे रहित-और विकारसे रहित-और निराकार अर्थात् आकाशके समान निरवयव-नित्यमुक्त अर्थात् मोह आदि जो अज्ञानसे कल्पित बंधन हैं उनसे रहित और निर्मल अज्ञानसे कल्पित अविद्यारूप मायाके बंधनसे रहित-मैं हूं इसप्रकार अपने आत्मरूपको जानै ३४॥

अहमाकाशवत्सर्वंबहिरंतर्गतोऽच्युतः ॥ सदा सर्वसमः शुद्धो निःसंगो निर्मलोऽचलः ॥ ३५ ॥

भा०-कदाचित् कहो कि, जीवात्मा निर्गुण

आदिरूपहो परंतु देहवान् प्रतीत होताहै इससे परिच्छिन्न हो जायगा सो ठीक नहीं इस शंकाका उत्तर आत्माको असंग दिखाकर देतेहैंकि, जगत्-के संपूर्ण जो जड दृश्य पदार्थ हैं उनकेभीतर में आकाशके समानगत (व्यापक) हूं-और सबसे भिन्न एकरस चेतन रूपहूं-कदाचित् कहो कि, सबके नाशसे आत्माकाभी नाश होजायगा सो भी ठीक नहीं क्योंकि मैं अच्युत हूं अर्थात् संपूर्ण कल्पित जगत्के नाश होनेपर मेरा नाश नहीं है। क्योंकि मैं अधिष्ठानरूप हूं-कदाचित् कहो कि, अधिष्ठानरूपसे तू सत्य अविनाशी है परंतु अंतः-करणमें तो आपकी सत्ता और चेतनता दोनों प्रतीत होती हैं और घट आदिमें केवल सत्ताही प्रतीत होती है यह विषमता आपमें है सो ठीक नहीं क्योंकि मैं सदैव(सब काल) में संपूर्णपदा-र्थोंके विषे सम (तुल्य)हूं और सत्त्वगुणके कार्य

होनेसे स्वच्छ अंतःकरण आदिमें सत्ता और चेत-नता दोनों प्रतीत होती हैं और तमोगुणके कार्य मलिन घट आदिमें सत्ताही प्रतीत होती है इसमें मुझ आत्माका कौन अपराध है—और मैं शुद्ध अर्थात् पुण्य पापसे रहित हूं और असंग अर्थात् वस्तुतः सबके संबंधसे रहित हूं—और निर्मल हूं अर्थात् संशय आदि मलोंसे रहितहूं-और अचल हूं अर्थात् सच्चिदानन्दरूप आदि अपने धर्मोंसे चलायमान नहीं होता ॥ ३५ ॥

नित्यशुद्धविमुक्तैकमखंडानंदम-
द्वयम् ॥ सत्यं ज्ञानमनंतं यत्परं
ब्रह्माहमेव तत् ॥ ३६ ॥

भा०—अब त्वंपदार्थ जीव, और तत् पदार्थ ब्रह्मका जो लक्ष्यपूर्वक वर्णन किया है उन दोनोंके अभेदका चिंतन (विचार) करते हैं कि

नित्य अर्थात् भूत भविष्यत् वर्तमान कालमें बाधारहित–शुद्ध अर्थात् अविद्या आदि मलसे रहित–विमुक्त अर्थात् संसाररहित—एक अर्थात् सजातीय भेदसे शून्य–अखंड अर्थात् देशकाल वस्तुके परिच्छेदसे शून्य–आनंद (सुखरूप) अद्वय अर्थात् विजातीय और स्वगत भेदसे रहित–इस प्रकारका जो सत्य, ज्ञान, अनंतरूप परब्रह्मका स्वरूप है वह इस श्रुतिमें भी कहा है वही सच्चिदानंदरूप मैं हूं इस प्रकार जीवात्मा और परमात्माकी एकताकी चिंता करै ॥ ३६ ॥

एवं निरंतराभ्यस्ता ब्रह्मैवास्मेति वासना ॥ हरत्यविद्याविक्षेपान्रोगानिव रसायनम्॥ ३७ ॥

भा०–इस प्रकार चिरकालपर्यंत किये अभ्या-

---

१ सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म।

ससे दृढ हुये जीव ब्रह्मकी एकताके ज्ञानसे उत्पन्न हुई विद्या—उसीसमय अविद्या और विद्यासे उत्पन्न जन्ममरण आदिरूप संसारको नष्ट कर-देती है इसका वर्णन करते हैं कि इस पूर्वोक्त रीतिसे बहुत कालतक निरंतर अभ्यास (मनन) का ब्रह्मही मैं हूं यह वासना अर्थात् देह और आत्माकी एकताके ज्ञानकी तुल्य जो ब्रह्म और आत्माकी एकताका दृढ ज्ञान वह अविद्याके किये चित्तके विक्षेप अर्थात् आत्मा और ब्रह्मका भेद ज्ञान आदि उनको इस प्रकार नष्ट करती है जैसे रोगोंको रसायन (औषध) सेवनसे नष्ट करती है ॥ ३७ ॥

विविक्तदेश आसीनो विरागो विजितेंद्रियः ॥ भावयेदेकमा-त्मानं तमनंतमनन्यधीः ॥ ३८ ॥

भा०-अब ब्रह्म और आत्माकी एकताके विचारका साधन कहते हैं कि, एकांत स्थानमें स्थित और विराग अर्थात् शब्द स्पर्श आदि विषयोंकी इच्छासे रहित-और विशेषकर जीती हैं इंद्रिय जिसने वह पुरुष अनन्यबुद्धि होकर अर्थात् अपने एक आत्मामेंही बुद्धिको लगाकर उस एक अनंत अर्थात् देशकाल वस्तुके परिच्छेदसे शून्य वा नाश रहित अत्माकी भावना (विचार) करै कि, जो सब भूतोंमें स्थित चेतनरूप ब्रह्म है वही मैं हूं अन्य नहीं यह निश्चय करै-इस प्रकार चिंतन करनेसे ब्रह्म और आत्माकी एकताका दृढ निश्चय हो जाताहै ॥ ३८ ॥

आत्मन्येवाखिलं दृश्यं प्रविलाप्य धिया सुधीः॥ भावयेदेकमात्मानं निर्मलाकाशवत्सदा ॥ ३९ ॥

भा०-कदाचित् कहो कि, यदि दृश्य (देखने योग्य) प्रपंच व्यवहारदशामें प्रत्यक्ष वर्तमान है तो एकताकी भावना कैसे होसकती है-इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि, शुद्ध है अंतःकरण वा बुद्धि जिसकी ऐसा मुमुक्षु आत्माके विषे अर्थात् कारण-रूप विवेकवाली बुद्धिमें संपूर्ण दृश्य (दीखते) जगत्को लय करके एक आत्माकी निर्मल आकाशके समान भावना (विचार) करै अर्थात् शरत्कालके मेघ रहित आकाशके समान आत्माको भी स्वच्छ और एक रस समझे और लयका प्रकार यह है कि पृथ्वीको जलमें जलको अग्निमें-अग्निको वायुमें-वायुको आकाशमें-आकाशको अव्याकृत (मूल प्रकृति वा माया) में और अव्याकृतको ब्रह्ममें लयकरै-फिर शुद्ध ब्रह्म व्यापकरूप मैं हूं ऐसा चिंतन करै ॥ ३९ ॥

नामवर्णादिकं सर्वं विहाय पर-
मार्थवित् ॥ परिपूर्णचिदानन्द-
स्वरूपेणावतिष्ठते ॥ ४० ॥

भा०—अब संपूर्ण दृश्य प्रपंचके त्यागसे समा-
धिके विषे जो विवेकीकी स्थिति उसका वर्णन
करते हैं कि, परमार्थ (मोक्ष वा ब्रह्म) का ज्ञाता
विवेकी पुरुष-नामरूप आदि संपूर्ण दृश्य जाति
मूर्ति आदि प्रपंचको त्यागकर —परिपूर्ण(व्यापक)
अधिष्ठान—अंतर्यामी—सत् चित् आनंद स्वरूप
साक्षी शुद्ध—चेतनरूपसे टिकता है अर्थात् परिपूर्ण
आदि स्वरूपही अपने जीवात्माको मानता है—
और आत्माका जो ज्ञानी है उसकी स्थिति इस
वचनमेंभी भगवान्‌ने वर्णन की है कि, जैसे
पवन रहित देशमें दीपक निश्चल रहता है वही

१यथा दीपो निवातस्थो नेंगते सोपमा स्मृता । योगेन यत-
चित्तस्य युंजतो योगमात्मनः ॥

उपमा उस योगीकी है जिसका चित्त वशमें है और जो अपने योगमार्ग (चित्तकी वृत्तिको रोकना) में लगरहाहै ॥ ४० ॥

ज्ञातृज्ञानज्ञेयभेदः परात्मनि न विद्यते ॥ चिदानन्दैकरूपत्वाद्दी-प्यते स्वयमेव हि ॥ ४१ ॥

भा०-कदाचित् कहो कि, समाधिमें पृथिवी आदि दृश्य प्रपंचके लय होनेपर भी ज्ञाता-ज्ञान ज्ञेयका भेद त्रिपुटीरूप प्रपंचके विद्यमान रहते पूर्वोक्त दीपककी उपमा योगीमें कैसे घटसकतीहै इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि, सविकल्पक समाधिमें यद्यपि ज्ञाता,ज्ञान, ज्ञेयका भेद प्रतीत होताहै परन्तु निर्विकल्पक समाधिमें प्रतीत हुआ जो परब्रह्मरूप परमात्मा है उसमें ज्ञाता,ज्ञान,ज्ञेय का भेद प्रतीत नहीं होताहै क्योंकि, वह परमात्मा चिदानंदरूप होनेसे स्वयं एव (आपोआप)

प्रकाशित होताहै अर्थात् उसके ज्ञानसे लिये किसीभी ज्ञान आदिकी अपेक्षा नहीं है॥४१॥

एवमात्मारणौ ध्यानमथने सततं कृते ॥ उदितावगतिर्ज्वाला सर्वाज्ञानेंधनं दहेत् ॥ ४२ ॥

भा०—इसप्रकार ब्रह्म और आत्माकी एकताके ज्ञानार्थ जो प्रयत्न उसके फलका वर्णन करते हैं कि, इस प्रकार आत्मा(मन)को नीचेकी अरणि और ओंकारको ऊपरकी अरणि(मथनेकी लडकी) करके निरंतर ध्यानरूप मथन करनेपर उदित (उत्पन्न) हुई जो अखंड ब्रह्माकार वृत्ति रूप ज्वाला वह संपूर्ण अज्ञान और अज्ञानकार्य जन्ममरण आदि संसाररूप ईंधनको दग्ध(भस्म) करदेती है सोई इस श्रुतिमें लिखाहै कि

---

१ आत्मानमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम् ॥ ज्ञाननिर्मथनाभ्यासाद्दहेत्कर्म स पंडितः।

मनको नीचेकी और ओंकारको ऊपरकी अरणि बनाकर ज्ञानके मथनेसे जो कर्मोंको दग्धकरता है वही पंडित है ॥ ४२ ॥

अरुणेनेव बोधेन पूर्वसंतमसे हृते । तत आविर्भवेदात्मा स्वयमेवांशुमानिव ॥४३॥

भा०—उत्पन्न हुई पूर्वोक्त ज्वाला अज्ञानरूप ईंधनको दग्ध करताहै और तभी आवरण रहित आत्माका प्रकाश होताहै इन दोनों बातोंको दृष्टांतसे स्पष्ट करतेहैं कि जैसे अरुण(सूर्यका सारथी) के उदय होनेसे प्रथम जो गाढ अंधकार उसका नाश होनेसे सूर्यका अखंड प्रकाश होताहै इसी प्रकार बोध (एकताका ज्ञान)से अज्ञानरूप अंधकारकी निवृत्ति होनेपर आत्माकाभी सूर्यके समान प्रकाश होताहै अर्थात् साक्षात् ब्रह्मज्ञान होजाताहै

सोई गीतामें लिखाहै कि, जिनका वह अज्ञान, ज्ञानसे नष्ट होगयाहै उनको ब्रह्मका ज्ञान इसप्रकार प्रकाशित होताहै जैसे सूर्यका प्रकाश होता है ॥ ४३ ॥

आत्मा तु सततं प्राप्तोऽप्यप्राप्यवदविद्यया ॥ तन्नाशेऽप्राप्तवद्भाति स्वकंठाभरणं यथा ॥ ४४ ॥

भा०-यदि श्रुतिआदि प्रमाणोंसे आत्मा साक्षात् अपरोक्ष है तो नित्य प्राप्त है क्योंकि अप्राप्त और परोक्ष नहीं होता है तो ऐसे ब्रह्मकी अज्ञानके नाशसे प्राप्ति कैसे कहते हो सो ठीक नहीं क्योंकि नित्य प्राप्त भी आत्मा अविद्यासे अप्राप्तके समान और अविद्याके नाशसे प्राप्तके समान प्रतीत होता है इस बातको दृष्टन्तसे वर्णन करते हैं कि, यद्यपि

१ ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः। तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम्।

ज्ञानदृष्टिसे आत्मा निरंतर प्राप्त है तथापि अवि- द्यासे अज्ञानियोंको अप्राप्तके समान-और अवि- द्याके नाश होनेपर प्राप्तके समान-इस प्रकार प्रतीत होता है जैसे अपने कंठका भूषण अज्ञान से अप्राप्त और ज्ञानसे प्राप्त होजाता है ॥ ४४ ॥

स्थाणौ पुरुषवद्भ्रांत्या कृता ब्रह्म णि जीवता ॥ जीवस्य तात्त्विके रूपे तस्मिन्दृष्टे निवर्तते ॥४५॥

भा०- कदाचित् कहो कि, जिसका अपरोक्ष साक्षात्कार है वह ब्रह्मही नित्य प्राप्त है जीवात्मा नित्य प्राप्त नहीं हो सक्ता सो ठीक नहीं क्योंकि अज्ञानसे भ्रमकेद्वारा परमात्माही जीवभाव- को प्राप्त हो जाता है वस्तुतः कोई जीव नहीं है इस बातको दृष्टांतसे वर्णन करतेहैं कि जैसे स्था- णुमें अंधकारके विषे भ्रांतिसे पुरुषको तुल्यता प्रतीत होती है इस प्रकार ब्रह्ममें भ्रमसे जीवभाव

प्रतीत होता है अर्थात् अनादि अज्ञानसे ब्रह्मही जीव प्रतीत होने लगता है और महावाक्योंके द्वारा जीवका जो वह तात्त्विक (सच्चा) रूप है उसकेसाक्षात्कार करनेसे (जाननेसे)वह जीवभाव इस प्रकार निवृत्त हो जाता है जैसे स्थाणुके ज्ञान-से पुरुषभ्रमकी निवृत्ति हो जाती है ॥ ४५ ॥

तत्त्वस्वरूपानुभवादुत्पन्नं ज्ञान-
मंजसा ॥ अहं ममेति चाज्ञानं
बाधते दिग्भ्रमादिवत् ॥ ४६ ॥

भा०–कदाचित् कहो कि, विवेकियोंको भी अहं-मम-(मैं मेरी) इत्यादि व्यवहारकीप्रतीतसे संसारकी निवृत्ति कैसे होगी सो ठीकनहीं–क्योंकि, अज्ञानसेउत्पन्न-वा पूर्वोक्तव्यवहारतत्त्वज्ञा-नसे नष्ट हो जाता है इस बातका दृष्टान्तपूर्वक वर्णन करते हैं कि,–वास्तविक सच्चिदानन्दरूप

जीवका जो यथार्थ स्वरूप उसके अनुभव (ज्ञान) से उत्पन्न हुआ जो तत्त्वमसि आदि महावाक्यों- के द्वारा जीव और ब्रह्मकी एकताका दृढज्ञान उससे सुखपूर्वक ही अहं-मम-इस-अज्ञानका इस प्रकार बोध होता है जैसे-दिशाओंका भ्रम पूर्व- में सूर्योदयके ज्ञानसे नष्ट हो जाता है ॥४६॥

सम्यग्विज्ञानवान्योगी स्वात्म-
न्येवाखिलं स्थितम्॥एकं च सर्व-
मात्मानमीक्षते ज्ञानचक्षुषा ॥ ४७ ॥

भाषा०-अब निवृत्त हुआ है अज्ञान जिनका ऐसे विवेकियोंकी दृष्टिका वर्णन करते हैं- कि-संशय और विपरीत ज्ञानसे-रहित जो ब्रह्मके साक्षात् ज्ञाता योगी हैं-उनको-ज्ञान- रूप-कूटस्थ-साक्षी- स्वरूप-अपने-आत्माके विषेही-संपूर्ण दृश्य प्रपंच-स्थित-(कल्पित) दीखता है-और-संपूर्ण जगत्को ज्ञान-

दृष्टिसे-एक-आत्मस्वरूप-ही देखतेहैं-अर्थात् आत्मासे भिन्न जगत्को-शशशृंग-और आकाश पुष्पकेसमान कल्पित समझकर-आत्माके-स्वरू-पको ज्ञानदृष्टिसे देखते हैं ॥ ४७ ॥

आत्मैवेदं जगत्सर्वमात्मनोऽन्य
न्न विद्यते ॥ मृदो यद्वद्घटादीनि
स्वात्मानं सर्वमीक्षते॥ ४८ ॥

भा०-कदाचित् कहो कि,प्रत्यक्षसे प्रतीतइस जगत्को आत्मासे भिन्नकैसे कहते होसो ठीकनहीं क्योंकि,यद्यपि उपादेय (कार्य)उपादान(कारण) से-भिन्नभी प्रतीत होताहैतथापि-पूर्वोक्तबाधसा-मानाधिकरण्यसे-अभेद-प्रतीतहोताहै-इस बात-को दृष्टांतपूर्वक वर्णन-करतेहैं-कि,यह संपूर्ण ज-गत्--आत्माही है-- क्योंकि,आत्मासे उत्पन्नहोनेसे आत्मासे अन्य इस प्रकार नहीं है--जैसेउपादान

रूप मृत्तिकासे उत्पन्न हुई घट आदि -मृत्तिकासे भिन्न नहीं हैं-इसप्रकार संपूर्ण जगत्को आत्मस्वरूप ही देखताहै-अपनेसे भिन्न नहींदेखता॥४८॥

जीवन्मुक्तिस्तु तद्विद्वान्पूर्वोपाधिगुणांस्त्यजेत॥ सच्चिदानन्दरूपत्वाद्भवेद् भ्रमरकीटवत्॥४९॥

भा०-अब ज्ञानीकी वास्तव दृष्टिको-कहकर-जीवन्मुक्ति-अवस्थाका वर्णन करते हैं कि जीवन्मुक्त-पुरुष तो पूर्वोक्त जीव और ब्रह्मकी एकताकोजानकर तत्त्वज्ञानसेपूर्व जो उपाधियोंके गुण थे-उनको-श्रवण- आदिद्वारा मायाके धर्म जानकर-विवेकसे त्यागता है-और-फिर-इस प्रकार सच्चिदानन्दरूप होजाता है जैसे भृंगीनामका कीट-भ्रमर-कीटके भयसे-भ्रमरकीटरूपही हो जाता है॥ ४९ ॥

तीर्त्वा मोहार्णवं हत्वा रागद्वेषा-
दिराक्षसान् ॥ योगी शांतिसमा-
युक्तो ह्यात्मारामो विराजते ॥ ५० ॥

भा०-अब जीवन्मुक्तकी स्थितिका वर्णन करते हैं कि, आत्माके विषे है आराम (स्थिति) जिसको-ऐसायोगी-मोहरूपीअज्ञानकेसमुद्रको तरकर और राग द्वेष आदि राक्षसोंको हतकर-शान्तिसे-युक्त हुआ -विराजमान होता है -इस श्लोकका श्लेषसे दूसराभी अर्थ-होसकताहै कि जैसे-श्रीरामचद्रजीने-समुद्रको तरकर और रावण आदि राक्षसोंको हतकर और सीतासे संयुक्तहोकर राजसिंहासनपर-स्थिति कीथी इसप्रकार ब्रह्म-ज्ञानका साधकयोगी तत्त्वज्ञानके द्वारा मोहरूपी समुद्रको तर-और उन राग-द्वेष आदि-राक्षसोंको हतकर जिन्होंने शांतिरूप सीताको चुराया था,

फिर-शान्तिसे-युक्तहुआ श्रीरामचंद्रके समान विराजमान होताहै-अर्थात्-निवृत्तिरूप सिंहासनपर बैठता है ॥५० ॥

बाह्यानित्यसुखासक्तिं हित्वात्म-
सुखनिर्वृतः ॥ घटस्थदीपवत्स्व-
च्छः स्वांतरेव प्रकाशते ॥ ५१ ॥

भा०-अब लक्षणसे जीवन्मुक्तकी अवस्थाका दृष्टान्तसे-वर्णन करतेहैं कि,नेत्र आदि बाह्यइन्द्रियोंके संबन्धसे उत्पन्न हुआ जो विषयानन्दरूप अनित्यसुख उसके विषे आसक्ति (प्रीती)को त्यागकर-आत्मसुखसे निवृत्त(सुखी)हुआ स्वच्छरूपसे अपने अन्तःकरणमें-इसप्रकार-साक्षात् ब्रह्मरूप प्रकाशता है जैसे घटके विषे स्थित दीपक-घटके भीतर ही प्रकाशता है-बाहर न.।

सोई-गीतामें-लिखा है कि हे अर्जुन! जब मनकी सब कामनाओंको त्यागता है तब अपने आत्मामें ही-सन्तुष्ट हुआ-स्थितप्रज्ञ-(स्थिरबुद्धि) कहाता है ॥ ५१ ॥

उपाधिस्थोऽपि तद्धर्मैर्न लिप्तो व्योमवन्मुनिः ॥ सर्वविन्मूढवत्तिष्ठेदसक्तो वायुवच्चरेत् ॥ ५२ ॥

भा०-उपाधियोंमें-स्थित भी-उपाधियोंका साक्षीरूप मुनि अर्थात्-वेदान्तशास्त्रका मनन करनेवाला तत्त्वज्ञानी-उपाधियोंके सुख-दुःख आदि धर्मोंसे इसप्रकार लिप्त नहीं होता-जैसे आकाश धूलिआदिसे लिप्त नहीं होता-और सबका ज्ञाता भी वह मूढके समान-टिकता है-और-विषयोंमें आसक्त हुआ वह वायुके समान

---

१ प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान् । आत्मन्येवात्मनातुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥

विचरता है अर्थात्-जैसे वायु सुगन्धित पदार्थोंमें प्रीतिसे रहित होकर गमन करता है इसीप्रकार ज्ञानी भी-विषयोंमें प्रीतिको त्यागकर अपने स्वरूपमें विचरता है ॥ ५२ ॥

उपाधिविलयाद्विष्णौ निर्विशेषं
विशेन्मुनिः॥जले जलं वियद्व्यो-
म्नि तेजस्तेजसि वा यथा ॥ ५३ ॥

भा०-अब ज्ञानीकी विधेय-कैवल्यमुक्तिका वर्णन करते हैं कि, देह आदि उपाधियोंके लय (नाश) होनेसे वेदान्तका मनन करनेवाला मुनि पृथिवी आदि विशेषोंसे रहित व्यापकरूप विष्णु (परब्रह्म) में इसप्रकार प्रविष्ट होता है-अर्थात् परब्रह्मरूप होजाता है जैसे नदीका जल समुद्रके जलमें दीपक आदिका तेज अग्निमें और घटका आकाश महान् आकाशमें प्रविष्ट होजाता है

अर्थात् जैसे जल आदिमें मिले जल आदिएकरूप होजातेहैं-इसीप्रकार परब्रह्ममें मिला जीवात्मा पर-ब्रह्मरूप ही होजाता है-भिन्नरूप नहीं होता॥५३॥

यल्लाभान्नापरो लाभो यत्सुखान्ना-
परं सुखम् ॥ यज्ज्ञानान्नापरं ज्ञानं
तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥ ५४ ॥

भा०-अब आठ श्लोकोंसे उस परब्रह्मका निरू-पण करते हैं-विदेह मुक्तिमें जिसकी प्राप्ति होतीहै कि, जिस परब्रह्मके-लाभ- अर्थात् प्राप्तिसे-दूसरा लाभ नहीं अर्थात् परमपुरुषार्थरूप उस लाभमें संपूर्ण जगत्के लाभ अन्तर्गत हैं-और जिसके सुखसे दूसरा सुख नहीं- क्योंकि, सर्वोत्तम उस सुखमें जगत्के तुच्छ सुख अन्तर्गत होजाते हैं-और जिसके ज्ञानसे उत्तम दूसरा ज्ञान नहीं अर्थात् मोक्षका हेतु होनेसे ब्रह्मज्ञा-

न ही–अत्यन्त श्रेष्ठ है–उसको ही ब्रह्मस्वरूप–निश्चय करै ॥ ५४ ॥

यद्दृष्ट्वा न परं दृश्यं यद्भूत्वा न पुनर्भवः ॥ यज्ज्ञात्वा न परं ज्ञानं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥ ५५ ॥

भा०–जिसब्रह्मको देखकर–दूसरा पदार्थ देखने योग्य नहीं-क्योंकि, अधिष्ठानरूप ब्रह्मके साक्षात्कारसे ब्रह्ममें कल्पित संपूर्ण जगत्का साक्षात्कार हो जाता है--और जिस ब्रह्मरूप होनेसे--दूसरा–होना नहीं अर्थात् फिर संसारमें जन्म-नहीं होता है सोई गीतामें लिखा है कि, जिस ब्रह्ममें जाकर फिर निवृत्त नहीं होते वह मेरा–सर्वोत्तम धाम है–और जिसको जानकर दूसरा ज्ञान नहीं क्योंकि, कारणरूप ब्रह्मको जा-

१ यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥

नकर-कारणसे भिन्न कार्यकी सत्ता-नहीं रहती अर्थात् कारणके ज्ञानसे समस्तकार्य जाना जाता है उसको-ब्रह्म-निश्चय करै अर्थात् जानै ॥ ५५॥

तिर्यगूर्ध्वमधः पूर्णं सच्चिदानंद-
मद्वयम् ॥ अनंतं नित्यमेकं य-
त्तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥ ५६ ॥

भा०-कदाचित् कहो कि, विदेहमुक्तिकी अवस्थामें-जिस ब्रह्मको तत्त्ववेत्ता प्राप्त होता है-वह परिच्छिन्न है वा अपरिच्छिन्न अर्थात्-अव्यापकहै वा व्यापक-यदि-परिच्छिन्न है तो नाशमान् होनेसे परमपुरुषार्थ-सिद्ध न होगा-और अपरिच्छिन्न है तो सर्वत्र विद्यमान् होनेसे उसको प्राप्ति न बनैगी-इस शंकाके उत्तरमें-परिपूर्ण-नित्य-आनन्दरूपब्रह्मका वर्णनकरतेहैं कि, जो सच्चिदानन्द ब्रह्म-तिर्यक् अर्थात्-पूर्व पश्चिम-उत्तर-दक्षिण-और-ऊपर नीचे-पूर्ण है-और देशकाल-वस्तुके-परिच्छेदसे

रहित है—और—नित्य (सत्य) और सजातीय-विजातीय—स्वगत—तीनों भेदोंसे रहित है—उस ब्रह्मका मुमुक्षु पुरुष—निश्चय करै ॥ ८६ ॥

अतद्व्यावृत्तिरूपेण वेदांते ल-
क्ष्यतेऽव्ययम् ॥ अखंडानंदमे-
कं यत्तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥ ५७ ॥

भा०—आत्मासे भिन्नकी व्यावृत्ति (निषेध) रूपसे—जो ब्रह्म-अविनाशीरूपसे-तत्त्वमसि आदि महावाक्योंकेद्वारा—लखा जाता है—और जो अखण्ड आनंद—एक—सुखरूप है—उसको मुमुक्षु पुरुष ब्रह्म जानै ॥ ८७ ॥

अखंडानंदरूपस्य तस्यानंदल-
वाश्रिताः ॥ ब्रह्माद्यास्तारतम्येन
भवंत्यानंदिनोऽखिलाः ॥ ५८ ॥

भा०—कदाचित् कहो कि, ब्रह्मा इन्द्र आदि भी

देवता आनंदके-भोक्ता शास्त्रमें-कहे हैं-तो ब्रह्म-कोही सर्वोत्तम आनन्दरूप कैसे कहते हो-सो-ठीक नहीं-क्योंकि, ब्रह्मा आदिकोंको जो आनन्द है वह भी ब्रह्मानन्दका लेश है-उससे परे कोई आनन्द नहीं इस बातका वर्णन करतेहैं कि, उस अ-खण्डानन्दरूप ब्रह्मानन्दके लेशकेआश्रय होकर-ब्रह्मा आदि संपूर्ण देवता-तारतम्यते अर्थात् अपने अपने पुण्यके अनुसार न्यूनाधिक-भावसे आनन्दवाले होतेहैं अर्थात् उस अपरिच्छिन्न ब्रह्म-का जो आनन्द उसका ही अंश ब्रह्मा आदि देव-ताओंके आनन्दमें झलकता है-और ब्रह्मानंदकी अपेक्षा उनका आनन्द क्षुद्र प्रतीतहोताहै-अतएव ब्रह्मानन्दसे परे कोई आनंद नहीं ॥५८॥

तद्युक्तमखिलं वस्तु व्यवहारस्त-
दन्वितः ॥ तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म
क्षीरे सर्पिरिवाखिले ॥ ५९ ॥

भा०-कदाचित् कहो कि, वह आनन्दरूप ब्रह्म-कहां रहताहै जिसका लेश ब्रह्मा आदिके आनन्दमें है-इस शंकाके उत्तरमें सर्वव्यापी ब्रह्मको दृष्टान्तके द्वारा देशकालसे रहित वर्णनकरते हैं-कि, तिस-सच्चिदानन्दरूपसे घट पट आदि संपूर्ण वस्तु युक्त हैं अर्थात् घटपट आदि संपूर्ण पदार्थ प्रकाशित होते हैं और वचन ग्रहण गमन त्याग आनंद आदि संपूर्ण व्यवहार उस ब्रह्मसेही युक्त(सिद्ध) हैं सोई गीतामें लिखा है कि, संपूर्ण इन्द्रियोंके गुणोंका प्रकाशक और संपूर्ण इन्द्रियोंसे रहित वह ब्रह्महै तिससे ब्रह्म संपूर्ण वस्तुओंमें इसप्रकार व्यापक है जैसे संपूर्ण दूधमें घृत व्यापक होकर रहताहै ॥ ६९ ॥

अनण्वस्थूलमह्रस्वमदीर्घमजम-

---

१ सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।

व्ययम् ॥ अरूपगुणवर्णाख्यं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥ ६० ॥

भा०-इसप्रकार प्रपंचमें व्यापक भी परमात्माको असंग होनेसे प्रपंचके धर्मोंमें स्पर्शका अभाव वर्णन करते हैं--आत्मा अणुरूप नहीं अर्थात् सूक्ष्मरूप नहीं और श्रुतिमें जो आत्मा को अणुरूप कहाहै-वह इसलिये है कि, आत्मा जाननेके अयोग्य है--अर्थात् जाननेको कठिन है और आत्मा स्थूल (महान्) नहीं -क्योंकि, जिन घट पटआदि पदार्थोंमें महान् बुद्धि हो तो वे अनित्य हैं और श्रुतिमें जो आत्माको महान्से महान् कहाहै वह सबके अधिष्ठान आत्माकी श्रेष्ठताके तात्पर्यसे है कुछ महान् पदका परिमाण अर्थ नहीं और आत्मा ह्रस्व और दीर्घ परिमाण से रहितहै और अज अव्यय अर्थात् जन्म और

मरणसे रहितहै और रूप--गुण-- ब्राह्मण आदि वर्णोंसे रहित है वह ब्रह्म है ऐसा मुमुक्षु पुरुष निश्चय करै ॥ ६० ॥

यद्भासा भासतेऽर्कादिर्भास्यैर्यत्तु न भास्यते ॥ येन सर्वमिदं भाति तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥६१॥

भाषार्थ--जिस ब्रह्मकी--भासा (तेज) से सूर्य आदिका प्रकाशहोताहै और प्रकाश करने योग्य सूर्य आदि जिस ब्रह्मको प्रकाश नहीं करसक्ते- और जिससे यह संपूर्ण जगत् प्रकाशित होताहै वह ब्रह्महै ऐसा निश्चय मुमुक्षु पुरुष करै अर्थात् प्रकाश करनेवाले सूर्य आदिका भी प्रकाशक ब्रह्मको समझे ॥ ६१ ॥

स्वयमंतर्बहिर्व्याप्य भासयन्न-

खिलं जगत् ॥ ब्रह्म प्रकाशते वह्नि-
प्रतप्तायसपिंडवत् ॥ ६२ ॥

भा०-इसप्रकार विदेह-कैवल्यमें स्थितिको कहकर-परम पुरुषार्थके (मोक्ष) तत्त्ववेत्ताके-निश्चयको कहते हैं-पूर्वोक्त ब्रह्म-ब्रह्मरूपसे जगत्के बाहर-भीतर व्यापक होकर-संपूर्ण जगत्को प्रकाश करता हुआ स्वयंभी-इसप्रकार प्रकाशता है जैसे-अग्निसे तपायमान-लोहके पिण्डमें-सर्वत्र व्याप्त होकर अग्नि-प्रकाशित होता है ॥ ६२ ॥

जगद्विलक्षणं ब्रह्म ब्रह्मणोऽन्यन्न
किंचन ॥ ब्रह्मान्यद्भाति चेन्मि-
थ्या यथा मरुमरीचिका ॥ ६३ ॥

भा०-ब्रह्म जगत्से विलक्षण है-अर्थात्-जड-

मिथ्या और दुःखरूप जगत्की अपेक्षा सच्चित् आनंदरूप ब्रह्म भिन्नहै-और ब्रह्मसे अन्य कुछ भी नहीं है और जो ब्रह्मसे भिन्न-घट पट आदि पदार्थ प्रतीत होते हैं वे-इसप्रकार मिथ्या हैं जैसे-मरु-देशके रेतमें-मरीचिका (अर्थात् जलके कण-अथवा तेजका पुंज) प्रतीत होताहै-वास्तवमें ब्रह्मही सत्य है उससे भिन्न सब मिथ्या है॥६३॥

दृश्यते श्रूयते यद्यद्ब्रह्मणोऽन्यन्न तद्भवेत्॥ तत्त्वज्ञानाच्च तद्ब्रह्म सच्चिदानंदमद्वयम्॥ ६४ ॥

भा०-फिर भी पूर्वोक्तका ही प्रत्यक्ष-स्वरूपसे वर्णन करते हैं-कि, ब्रह्मसे भिन्न जो कुछ दीखताहै वा-कानोंसे सुना जाताहै-और मनसे स्मरण किया जाताहै वह सब ब्रह्मसे भिन्न नहीं है-और तत्त्वज्ञानसे वह ब्रह्म सत् चित्-आनन्द-अद्वैत-स्वरूप है॥ ६४ ॥

सर्वगं सच्चिदात्मानं ज्ञानचक्षुर्नि-
रीक्षते ॥ अज्ञानचक्षुर्नेक्षेत भा-
स्वंतं भानुमंधवत् ॥ ६५ ॥

भा०–कदाचित् कहो कि, सच्चिदानंद ब्रह्म–सर्वव्यापकहै–तो सर्वत्रक्यों नहींदीखता–सो ठीक नहीं–सर्वव्यापी भी ब्रह्मतत्त्वज्ञानियोंको दीखताहै अज्ञानियोंको नहीं कि, सर्वत्र व्यापक भी सत् चित्–आनन्द-रूप आत्माको-वही पुरुष देखताहै जिसके ज्ञानरूपी नेत्र विद्यमानहैं-और जो अज्ञानचक्षुहै अर्थात् जिसकी दृष्टि अज्ञानसे आवृतहै वह पुरुष अपने सच्चिदानंदरूप आत्माको इस-प्रकार नहीं देखता (जानता) है जैसे प्रकाश-मान सूर्यको नेत्रहीन (अंधा) पुरुष नहीं देखताहै ॥ ६५ ॥

श्रवणादिभिरुद्दीप्तो ज्ञानाग्निपरि-

तापितः॥ जीवः सर्वमलान्मुक्तः
स्वर्णवद्द्योतते स्वयम् ॥ ६६ ॥

भा०-कदाचित् कहो कि ज्ञान चक्षु पुरुषोंका विवेकसे देह इंद्रियोंमें अध्यासरूपमलके दूर होनेपरभी पूर्व जन्मकेअध्याससे संसारकी वासनाके वशीभूत होकर फिर भी अहं मनुष्यः (मैं मनुष्य हूं)ऐसा देहरूप बंधन प्रतीत होताहै तो आत्मस्वरूपमें स्थिति मुक्ति कैसी होसकतीहै इस शंकाका उत्तर देते हैं कि—श्रवण,मनन,निदिध्यासन आदिसे भली प्रकार प्रज्वलित जो ज्ञानरूप अग्नि तिससे परितापित (युक्त) जो जीव है वह संपूर्ण मलोंको त्यागकर अर्थात् अज्ञानसे निवृत्त होकर सुवर्णके समान स्वयंही प्रकाशरूप होता है भावार्थ यह है कि, सच्चिदानंदरूप होकर प्रकाश होनेपर मैं मनुष्य हूं यह अध्यास फिर नहीं होता है ॥ ६६॥

हृदाकाशोदितो ह्यात्मा बोधभा-
नुस्तमोऽपहृत्॥ सर्वव्यापी सर्व-
धारी भाति सर्वं प्रकाशते ॥ ६७ ॥

भा०-कदाचित् कहो कि,इस प्रकार शुद्धहुई आत्माका क्या रूप होताहै और कहां प्रकट होता है और किसको प्रकाशता है इस शंकाका उत्तर देते हैं कि,इसप्रकार जीव ब्रह्मकी एकताके ज्ञान-से शुद्ध हुआ निर्मल बोधरूप सूर्य (आत्मा) हृदयाकाशमें उदय होकर अंधकाररूप अन्तः-करणके मलको हरता (नाशता)है और सबका प्रकाश करता है आप स्वयंप्रकाशरूप है कदा-चित्कहो कि हृदयाकाशकोपरिच्छिन्न(नाशवान्) होनेसे आत्मा भी तिसकेसंग परिच्छिन्नहोजायगा इस शंकाका उत्तर देते हैं कि, आत्मा सर्वव्यापी है अर्थात् जगत्में पूर्ण है और सबका आधारहै

अर्थात् अज्ञानके कार्य जगत्का अधिष्ठान है तात्पर्य यह है कि भ्रमरूप हृदयाकाश व्यापकरूप आत्माका नाशक नहीं होसकता ॥ ६७ ॥

दिग्देशकालाद्यनपेक्ष्यसर्वगं शीतादिहृन्नित्यसुखं निरंजनम् ॥ यः स्वात्मतीर्थं भजते विनिष्क्रियःस सर्ववित्सर्वगतोऽमृतोभवेत् ॥६८॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य-श्रीमच्छंकराचार्यकृत आत्मबोधः समाप्तः ॥

भा०—अब आत्मतत्त्वज्ञानको तीर्थरूप वर्णन करतेहैं और कर्म और सब तीर्थ और सब देवताओंकी सेवाका जो फल है उसकी अपेक्षा उत्तम फल आत्मज्ञानरूप तीर्थका है क्योंकि,आत्माकी सेवासे संपूर्ण सेवाओंकी आकांक्षा शांत होजाती है—कदाचित्कहो कि तत्त्वज्ञानीभी स्वाभा-

विक पापोंके दूर करनेकेलिये प्रयागआदि तीर्थोंका सेवन करते हैं तो आत्मज्ञानको स्वर्णके समान प्रकाशमान और संपूर्ण मलसे रहित कैसे कहते हो इस शंकाके उत्तरमें आत्म-रूप तीर्थमें स्नानके कर्त्ताको कुछ भी कर्तव्य नहीं इसका वर्णन करते हैंकि, दिशा(पूर्व आदि) और देश (कुरु आदि) काल (भूत आदि) इन सबकी अपेक्षा से रहित और सर्वत्र व्यापकरूप-और शीत आदिके नाशक अर्थात् शीत उष्ण आदि द्वंद्वके नाशक और सर्वदा सुखरूप और निरंजन अर्थात् मायाके कार्य जगत्रूप मलसे रहित जो आत्मारूप तीर्थ उसको जो मनुष्य क्रिया (कर्म) ओंसे रहित होकर भजता है अर्थात् सब कर्मोंको त्यागकर जो आत्मतीर्थके विचारमें तत्पर रहता है सर्वमें व्यापक हुआ और

सबका ज्ञाता वह अमृतरूप होजाता है अर्थात् जो आत्मतत्वका श्रवण मनन निदिध्यासन आदिके द्वारा विचार करते हैं वे सबके ज्ञाता हैं और जो जन्ममरणरूप संसारके अभावका फल उनको मिलताहै वह किसी तीर्थाटन आदि कर्म करनेवालेको नहीं मिलताहै अतएव मुमुक्षु पुरुषोंको आत्मतीर्थकी सेवा करना अत्यंत आवश्यकहै ॥ ६८ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमच्छंकराचार्य्यकृतात्मबोधस्य पंडितमिहिरचंद्रकृतभाषाविवृतिः समाप्ता ॥

क्रय्यपुस्तकें (वेदान्त-ग्रन्थाः)



नाम	कि. रु. आ.
अपरोक्षानुभूति-श्रीशङ्कराचार्यकृत और स्वामि श्रीविद्यारण्य मुनिकृतदीपिका सहित तथा श्रीयुत पं० रामस्वरूपजी कृत भाषाटीकासमेत । जिसमें-संक्षेपसे वेदान्तप्रक्रियाका सरलरीतिसे भली प्रकार वर्णन है	०-१२
अष्टावक्रगीता-भाषाटीकासहित-श्री अष्टावक्रमुनि प्रणीत गुरुशिष्य संवादमें ब्रह्मविद्या जाननेका अतिसरल सुगमोपाय है	१- ०
अवधूतगीतामूल-श्रीमत्परमयोगिवर श्रीदत्तात्रेयप्रणीत रेशमी गुटका.	०- ७

तत्त्वबोध–भाषाटीकासमेत। यह वेदा-
न्तका प्रथम श्रेणीका सर्वोत्तम
ग्रन्थ है. ०– ३

देवीगीता–(देवीभागवतान्तर्गत)
भाषाटीकासहित। शाक्त लोगों याने
देवी भक्तोंके लिये नित्य पाठ करने.
योग्य है. ०–१४

नारदगीता–मूलमात्र ०– १

नारदगीता–भाषाटीकासहित. ०– १

निर्वाणाष्टक. ०– १

पञ्चदशी·सटीक–पं०रामकृष्णाख्य विद्वान्
तत्त्वकी विवेकव्याख्या टीका सहित. २– ८

पञ्चदशी–पं० मिहिरचन्द्रकृत अत्युत्तम
भाषाटीकासहित। जिसमें–तत्त्वविवेक,
भूतविवेक, महावाक्यविवेक,

प्रश्नोत्तरमुक्तावली-भाषाटीकासहित ।
इसमें अतिश्रेष्ठ १२२प्रश्न और उनके
यथार्थ उत्तर हैं (गुरुशिष्य संवाद) ०-३

प्रश्नोत्तरी-(प्रश्नोत्तरमणिरत्नमाला)
श्रीमच्छंकराचार्य कृत मूल तथा पं०
नन्दलालशास्त्रीकृत भाषाटीकासमेत.
(गुरुशिष्यसंवाद) ०- २

प्रश्नोत्तररत्नमाला-सटीक ०- २

पुरञ्जनोपाख्यान-भाषाटीकासहित ।
बहुत ज्ञानमय अपूर्व वेदान्त है. ०- ६

ब्रह्मसूत्र-(शारीरक) शांकरभाष्यसहित,
इसमें शांकर भाष्यकी गोविन्दराज
कृत रत्नप्रभा, सर्वतंत्रस्वतंत्र वाच
स्पतिमिश्रकृत भामती, आनंदगिरि

कृत न्याय निर्णय यह तीनों टीकाएँ संयुक्त हैं. १२- ०

ब्रह्मसूत्र-(शारीरक) "वेदान्तदर्शन" प्रभुदयालकृत वेदान्ततत्त्वप्रकाश भाषाभाष्य समेत। मुमुक्षुओंको अति सुगमतासे सुबोध ज्ञानोपयोगी. बहुत सरल भाषामें है ४- ०

ब्रह्मसूत्र-माध्वभाष्य श्रीमदानन्दतीर्थ विरचित। जयतीर्थ मुनि विरचित तत्त्वप्रकाशिकाटीका-सहित. ८- ०

ब्रह्मसूत्र-(वेदान्तदर्शन) भाष्यानुसार सरल भाषाटीकामें है. १- ८

भगवद्गीता-चिद्घनानन्दी "गूढार्थदीपिका" भाषाटीका । श्रीमत्परमहंस परिव्राज-

काचार्य पूज्यपाद श्रीस्वामी चिद्घनानन्द-गिरिजी महोदयने सर्व सांसारिक लोगोंके उपकारार्थ "श्रीमच्छांकरभाष्य"के अनुसार पदच्छेद-अन्वयांक-तथा-पदार्थसहित निर्माण किया है। यह मुमुक्षुगणोंको अति सरल सुबोधयुक्त है तथा विलायती कपडेकी मनोहर जिल्द बँधी है. ८- ०

भगवद्गीता-आनन्दगिरिकृत भाषाटीकासहित। जिसमें-अन्वयकरके भावार्थ स्पष्ट कियागयाहै. ग्लेज कागज ४- ०

" तथा रफ . ३- ०

भगवद्गीता सान्वय ब्रजभाषा दोहासहित।

अत्युत्तम ग्लेजकागज १- ८

" तथा रफ कागज	१- ४
भगवद्गीता-वैष्णव हरिदासजीकृत भाषार्थ तथा दोहा चौपाइयोंमें (परमानन्द प्रकाशिका.)	१- ०